

अष्टमोऽध्यायः
नरवृत्तवर्णनम्
नरवृत्त का वर्णन

ब्रह्मोवाच

कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोधत। गदतो द्विजशार्दूल विस्तराच्छास्त्रतस्तथा॥ १॥
वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि। शुभदेशाश्रयश्चैव पत्नी वैवाहिकी गृहे॥ २॥
स्वाश्रयेण विना शक्यं न यस्माद्रक्षणादिकम्। वित्तानामिव दाराणामतस्तद्विधिरुच्यते॥ ३॥
हेतवो हि त्रिवर्गस्य विपरीतास्तु मानद। अरक्षणाद्भवन्त्यस्मादमीषां रक्षणं मतम्॥ ४॥
निसर्गात्पुंस्यसन्तोषाद्गुणदोषविमर्षतः। दुष्टानां चापि संसर्गाद्रक्ष्या एव च योषितः॥ ५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं— अब मैं गृहस्थाश्रमी के लिये शास्त्रोक्त गार्हस्थ्य धर्म सम्बन्धित कर्तव्यों का वर्णन विस्तार से कर रहा हूँ। इनको समस्त गृह्यकर्म वैवाहिकाग्नि में सम्पन्न करना चाहिये। विवाहिता पत्नी शुभदेश में स्थित घर में रहे। आश्रय के अभाव में स्त्री की रक्षा नहीं की जा सकती जैसे आश्रम व्यवस्था के अभाव में धन-समान आदि रक्षित नहीं हो सकते। अब स्त्रीगण की रक्षा प्रभृति नियमों को कहता हूँ। हे मानद! स्त्रियाँ धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग प्रदाता तो हैं, तथापि सम्यक् रूप से रक्षित न होने पर ये ही त्रिवर्ग की नाशक भी हो जाती हैं। अतः सर्वप्रकार दुष्टसंसर्ग से इनकी रक्षा करो॥१-५॥

पुरुषस्थानवेश्मानि त्रिविधं प्राहुराश्रयम्। वित्तानां रक्षणाद्यर्थमपूर्वाधिगमाय च॥ ६॥
कुलीनो नीतिमान्प्राज्ञः सत्यसन्धो दृढव्रतः। विनीतो धार्मिकस्त्यागी विज्ञेयः पुरुषाश्रयः॥ ७॥
नगरे खर्वटे खेटे ग्रामे चापि क्रमागते। यात्रावशाद्वा निवसेद्धारमिकाद्यजनान्विते॥ ८॥
गुरुणानुमतस्तत्र ग्रामण्यादिजनेन वा। प्रतिवेशमाद्यबाधेन शुद्धं कुर्यान्निवेशनम्॥ ९॥
द्वारचत्वरशालानां सर्वकारुकवेश्मनाम्। द्यूतसूनासुरावेशनटराजानुजीविनाम्॥ १०॥
पाखण्डदेववीथीनां राजमार्गकुलस्य च। दूरात्सुगुप्तं कर्तव्या जीविका विभवोचिता॥ ११॥

स्त्री के आश्रयस्थल तीन हैं— पुरुष, स्थान तथा गृह। निवास, स्वभाव, दोष-विमर्श में स्वाभाविक असन्तोष, भावना, गुण-दोष में व्यत्यय तथा दुष्ट संगति से स्त्री की सदा रक्षा करें। धन-सम्पत्ति की रक्षा तथा अपूर्व की प्राप्ति—ये तीन आश्रय हैं। कुलीन, नीतिमान्, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिष्ठ, दृढव्रती, विनीत, धार्मिक प्रवृत्ति युक्त तथा त्यागी ही आश्रय के योग्य कहा गया है। यात्राकाल में धार्मिकों से युक्त खर्वट (कस्बा), खेट (छोटा गाँव), तथा ग्राम में से किसी को निवास स्थान बनायें। इनमें से किसी एक में गुरुगण की आज्ञा लेकर तथा प्रमुख व्यक्तियों से सहायता लेकर, पड़ोसी आदि को कोई असुविधा न देते हुये दोषरहित निवास बनायें। नगर प्रवेशद्वार, चौराहा, राजभवन, सभी कारीगरों के भवन, द्यूतकर्मिगण के निवास, हिंसक प्रवृत्ति वालों के निवास, पाखण्डीगण के निवास, वेश्या-नट तथा राजकर्मिगण के निवास, देवमन्दिर की गली, राजमार्ग तथा राजकुल वालों के निवास से अति दूर स्वशक्ति के अनुरूप अपनी जीविका (आवास) बनाये॥६-११॥

सापिधानैकनिष्काशं शुद्धपृष्ठं समन्ततः। सद्भुत्ताप्तजनाकीर्णमदुष्टप्रातिवेशिकम्॥ १२॥

प्रागुदक्प्रवणे देशे वास्तुविद्याविधानतः। प्रविभक्तक्रियाकांक्षं सर्वर्तुकमनोहरम्॥ १३॥
 अर्चास्नानोदकागारगोष्ठागारमहानसैः। युक्तं गोवाजिशालाभिः सदासीभृत्यकाश्रयैः॥ १४॥
 बहिरन्तःपुरस्त्रीकं सर्वोपकरणैर्युतम्। विभक्तशयनोद्देशमाप्तवृद्धैरधिष्ठितम्॥ १५॥

छादनयुक्त भवन का निर्माण करना चाहिये जो एक दरवाजे का हो, स्वच्छ हो तथा चतुर्दिक् सच्चरित्र तथा आप्तजनों का निवास हो। पड़ोसी दुष्टस्वभाव वाले न हों। भवन निर्माणार्थ ऐसी भूमि का चयन करना चाहिये जो पूर्व तथा उत्तर की ओर ढाल वाली हो। वास्तुविद्या के अनुसार उसमें ऐसा निर्माण किया जाये ताकि ऋतुओं के अनुसार पृथक्-पृथक् कक्ष हों। वे मनोहर हों। देवगृह, स्नानगृह, जल संचयगृह, गोशाला, पाकशाला, अश्वशाला, दासी तथा भृत्यों के आवास, स्त्रीगण हेतु अन्तःपुर, बाह्यगृह सभी पृथक् रूप से तथा तदनुरूप सामग्री से युक्त बने हों। स्त्रीगण का शयनकक्ष सर्वाधिक सुरक्षित स्थान में हो। वहाँ श्रेष्ठ वृद्धों का निवास भी निर्मित हो॥ १२-१५॥

अरक्षणाद्धि दाराणां वर्णसङ्करजादयः। दृष्टा हि बहवो दोषास्तस्माद्रक्ष्याः सदा स्त्रियः॥ १६॥
 न ह्यासां प्रमदं दद्यान्न स्वातन्त्र्यं न विश्वसेत्। विश्वस्तवच्च चेष्टेत न्याय्यं भर्त्सनमाचरेत्॥ १७॥
 नाधिकारं क्वचिद्दद्यादृते पाकादिकर्मणः। स्त्रीणां ग्रामीणवत्ता हि भोगायालं सुशासिता॥ १८॥
 नित्यं तत्कर्मयोगेन ताः कर्तव्या निरन्तराः। इत्येवं सर्वदाः व्याप्तेः स्यादविद्यनिराश्रया॥ १९॥

इसका कारण यह है कि जहाँ स्त्रीगण की सुरक्षा नहीं की जाती, वहाँ पर सुरक्षा के अभाव के कारण वर्णसंकर सन्तानोत्पत्ति जैसे दोष दृष्टिगोचर होते हैं। तभी स्त्री सदा रक्षा योग्य होती है। इनको उन्मादकारी द्रव्य नहीं देना चाहिये। स्वतन्त्रता भी नहीं देनी चाहिये तथा पूर्णतः विश्वास भी नहीं करना चाहिये। इनके साथ विश्वस्त जैसा व्यवहार तो करते रहें, तथापि समय आने पर इनकी भर्त्सना भी करें। इनको भोजन बनाने के अतिरिक्त अन्य अधिकार प्रदान न करें। इनके लिये गृहस्थी के कार्यकलाप की निपुणता का होना ही भोग हेतु पर्याप्त है, इनको अनुशासन में ही रहना चाहिये। वे सदा किसी कार्य में लगी रहें, बेकार न बैठें। इस रीति का पालन करने पर गृह अविद्या तथा अलक्ष्मी से दूर हो जाता है॥ १६-१९॥

दौर्गत्यमतिरूपं चाप्यसत्सङ्गः स्वतन्त्रता। पानाशनकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता॥ २०॥
 कुहकेक्षणिकामुण्डाभिक्षुकीसूतिकादिभिः। गोप्रसङ्गैस्तथासद्भिर्लिङ्गियाचकशिल्पिभिः॥ २१॥
 संवाहोद्यानयात्रासूद्यानेष्वामन्त्रणादिषु। प्रसङ्गस्तीर्थयात्रार्थं धर्मेषु प्रकटेषु च॥ २२॥
 विप्रयोगः सदा भर्त्रा तज्जातिकुलनिःस्वता। अमाधुर्यकदर्यत्वे भृशं पुंसां च वाच्यता॥ २३॥
 अतिक्रौर्यमतिक्षान्तिरत्यन्ताभीतिपातनम्। स्त्रीभिर्जितत्वमत्यर्थं सत्यं तास्ताः सदोषताः॥ २४॥

घर की दुर्गति वाली स्थिति, सुन्दर रूप, असज्जनों का साथ, स्वतन्त्रता, मद्यादिपान, सुन्दर भोजन, व्यर्थ बातचीत तथा गोष्ठी में रुचि, बेकार बैठे रहना, मेला प्रभृति में पर्यटन की अधिक इच्छा, भिक्षुकी, कुटनी, नटी, दाई आदि दुष्टा स्त्री की संगति, संन्यासी, भिक्षुक, शिल्पी, असत्पुरुष संगति, अथवा इनसे अधिक समागम, वाहन प्रयोग, उद्यान क्रीड़ा, यात्रा निमन्त्रणादि में अधिक जाना, तीर्थयात्रा तथा धर्म की आड़ में अधिक बाहर घूमना, सर्वदा पति से दूर रहना, कुल की निर्धनता, रुक्ष व्यवहार, कायरता, पति की निन्दा सुनते रहना, अति क्रूरता, अति शान्ति, अति भय, अति पतन, तत्काल पराजय मान लेना आदि स्त्रीगण के लिये अत्यन्त दोषयुक्त कारण हैं॥ २०-२४॥

स्त्रीणां पत्युरधीनत्वात्पुमानेव हि निन्द्यते। भर्तुरेव हि तज्जाड्यं यद्भृत्यानामयोग्यता॥ २५॥
 तस्माद्यथोदितास्त्वेता रक्ष्याः शासनताडनैः। ताडनैश्च यथाकालं यथावत्समुपाचरेत्॥ २६॥
 परिगृह्य बहून्दारानुपचारैः समो भवेत्। यथाक्रमोचितैः कर्म दानसत्कारवासनैः॥ २७॥
 प्रथमोऽभिजनो धर्मो योग्यत्वं च सुपुत्रता। पक्षे वित्तं विशेषस्त्रीणां मानस्तत्कारणं तथा॥ २८॥
 तस्मान्मानो न कर्तव्यो हेयश्चापि न तत्कृतः। गुरुत्वे लाघवे वापि सतां कार्यं निबन्धनम्॥ २९॥

जो पति स्त्री के अधीन है, वह निन्दा का पात्र है। यही है उसकी मूर्खता, अयोग्यता। उसके भृत्यादि भी अयोग्य बने रहते हैं। अतः अनुशासन एवं ताड़नादि से स्त्री की रक्षा करे। अवसर आने पर उसको सम्मानित भी करे। जहाँ अनेक स्त्रियों से एक ही ने विवाह किया हो, वहाँ सभी स्त्रियों के साथ समानता का भाव रखे। वरिष्ठ-कनिष्ठ का विचार करके उनका सत्कार तथा वस्त्रादि दान करना चाहिये। स्त्री की प्राथमिक योग्यता है उसकी कुलीनता। दूसरी योग्यता है धर्माचरण तथा पुत्रवती होना। समयानुसार स्त्री को धनादि भी प्रदान करे। यथोचित सम्मान देने तथा उसके कारण पर भी विचार रखना चाहिये। अतः सामान्य से कारण पर उनका विशेष सम्मान ही करे तथा न तो सामान्य कारणवशात् उनका अपमान ही करे। सत्पुरुषगण को किसी को गौरव प्रदान करने तथा किसी को हलके में लेने के नियम बनाना चाहिये॥२५-२९॥

आकस्मिके प्रयुञ्जानः प्रेक्षावान्मानलाघवे। स यत्किञ्चनकारित्वाच्चायमेवैति लाघवम्॥ ३०॥
यथा मानापमानौ हि प्रयुज्येतानिमित्ततः। तन्निमित्ता जनत्यागे प्रयतन्ते तदाश्रिताः॥ ३१॥
एतदेव ह्यपत्यानां ज्ञेयं माननकारणम्। यत्स्वापत्यनिमित्तेषु प्रधाने कुलयोग्यते॥ ३२॥
तत्संयोगात्सुखं पुंसां महदुःखं वियोगतः। तत्प्राप्तिः प्रतिहातव्या स्वार्थायैव प्रियाण्यपि॥ ३३॥
अतः स्वार्थेकनिष्ठोऽयं लोकः सर्वोऽवसीयते। तत्प्रसिद्धिर्भवेदस्तमानाद्भ्रान्तिविधायकः॥ ३४॥

मनचाहे रूप से किसी को मान देना तथा मनचाहे रूप से किसी को लघु ठहराना वर्जित है। बिना कारण किसी को मान देने तथा अपमान करने से लोग उसका ही त्याग कर देते हैं। सन्तान को मान प्रदानार्थ उसके मातृकुल की योग्यता ही प्रधान है। मान के संयोग से पुरुष सुखी तथा वियोग से दुःखी होता है। अतः स्वार्थ के लिये उसकी प्राप्ति की इच्छा का ही परित्याग करे। उससे सम्बन्धित वस्तुओं का भी परित्याग कर देना चाहिये। स्वार्थपरायण का यह संसार ही विनष्ट हो जाता है। विनाश ही उसकी प्रसिद्धि है॥३०-३४॥

ततो दारादिका भृत्या नियन्तव्यास्तथा द्विजाः। यथेहामुत्र वा श्रेयः प्राप्नुयादुत्तरोत्तरम्॥ ३५॥
स्त्रीणां धर्मार्थकामेषु नातिसन्धानमाचरेत्। तासां तेष्वभिसन्धानाद्भवेदात्माभिसंहितः॥ ३६॥
जायात्वर्धं शरीरस्य नृणां धर्मादिसाधने। नातस्तासु व्यथां काञ्चित्प्रतिकूलं समाचरेत्॥ ३७॥
यज्ञोत्सवादौ नाकस्मात्काञ्चिदासां विशेषयेत्। वस्त्रताम्बूलदानादौ प्रतिपत्तौ समो भवेत्॥ ३८॥

हे द्विजवृन्द! तभी मनुष्य अपने भृत्यादि का तथा स्त्रीगण का नियमन अनुशासन से करता रहे। इससे इहलोक तथा परलोक में उत्तरोत्तर कल्याण मिलता है। स्त्री को धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग के कार्य में कभी धोखा न दे। इन कार्यों में स्त्री के साथ प्रवृत्ति करने वाला अपनी ही आत्मा को धोखा देता है। धर्म कार्यार्थ स्त्री ही पुरुष के शरीर का अर्ध भाग है। अतः उनके प्रति जो व्यवहार किया जाये उसमें यह देखते रहना होगा कि स्त्री को दुःख न हो। जिसकी कई पत्नियाँ हैं, वह यज्ञादि तथा अन्य कार्य में अकारण किसी एक पत्नी को अधिक महत्व प्रदान न करे। स्त्री गण के वस्त्र-ताम्बूलादि प्रदान करते समय भी सभी व्यवहारों में सभी स्त्रियों के प्रति समानता का व्यवहार करना चाहिये॥३५-३८॥

प्रियाप्रियत्वं भेदो हि कामतस्तु रहोगतः। उपचारैः पुनर्वाक्यैस्तुल्यवृत्तिः प्रशस्यते॥ ३९॥
आर्तवे तु पुनः सर्वा उपगम्याः प्रिया इव। पूर्वाभिजातधर्मार्था पुत्रिणी चोत्तरोत्तरम्॥ ४०॥
उदगच्छेदनेनैव विधिना नित्यमार्तवे। तुल्यवृत्तिर्यथाकालं स्वं स्वं वासमखण्डयन्॥ ४१॥
नित्यपर्यायवासानामपादानमसून्विदुः। ऋतुदुःखं प्रमोदश्च तथा पूर्वं समागतः॥ ४२॥
अन्यया सह यदुःखं सदसद्वा रहोगतम्। उत्कण्ठितं वा यत्किञ्चित्सपत्नीषु न तद्वसेत्॥ ४३॥
यत्किञ्चिदन्यसम्बद्धमन्या कथितं मिथः। तस्य कुर्यादनिर्वेदमात्मनैव विचिन्तयेत्॥ ४४॥

यदि काम क्षेत्र में कोई स्त्री अधिक प्रिय है अथवा कोई अप्रिय है, तब उसके साथ इस प्रकार का प्रिया-अप्रिय व्यवहार एकान्त में ही करे। सामान्य व्यवहार तथा वार्ता आदि में समानता ही प्रशंसनीय है। जब जिस पत्नी का ऋतुकाल आये तब उसे

प्रियतमा मानकर समागम करे। यह नियम प्रत्येक पत्नी हेतु है। ज्येष्ठ स्त्री, कुलीन स्त्री, सदाचारी स्त्री, धर्मशील स्त्री तथा पुत्रवती में से क्रमशः एक-दूसरे से अधिक सम्माननीय हैं। इसी नियमानुसार ऋतुकाल में बहुपत्नीवान् व्यक्ति समागम करे। समयानुसार अपनी गृहस्थी को खण्डित किये बिना सबसे समान व्यवहार करे। सर्वदा पर्याय क्रम से रहने को प्राण कहा गया है। ऋतुकालिक दुःख, प्रमोद तथा पूर्व समागत तथा सर्वदा पर्याय क्रमेण अविच्छिन्न निवास ही प्राण है। एक पत्नी के साथ एकान्त में जो कुछ दुःख-सुख, सत्-असत् का अनुभव प्राप्त करे अथवा उस पत्नी की पति के प्रति जो उत्सुकता हो इनका वर्णन अन्य पत्नियों से कदापि न करे। यदि एकान्त में कोई पत्नी अपनी दूसरी सौत के सम्बन्ध में कोई आरोप लगाये, तब उस पति को उसका वहीं समाधान करके उसे दुःख आदि से रहित कर देना चाहिये॥३९-४४॥

अन्योऽन्यमत्सराख्यानेर्न ता वाचापि भर्त्सयेत्। गुणदोषौ च विज्ञाय स्वयं कुर्यान्न निष्कलौ॥ ४५॥
वस्त्रालङ्कारभोज्यादौ तदपत्येष्वनुक्रमात्। मातृदोषाननादृत्य तुल्यदृष्टिः पिता भवेत्॥ ४६॥
अन्यस्यान्यगतैर्दोषैर्दूषणं न हि नीतिमत्। यत्तु तेषामपत्यं तु तत्तुल्यमुभयोरपि॥ ४७॥
प्रीतिं द्वेषमभिप्रायं शौचाशौचगतागमान्। बहिरन्तश्च जानीयाद्वास गूढचरैः सदा॥ ४८॥

एक-दूसरे के प्रति मत्सरयुक्त भावना का पोषण न करे। वचन से भी स्त्री की भर्त्सना न करे। स्त्री के गुण-दोष को भली प्रकार से जानकर दोष को दूर करने तथा गुण की वृद्धि करने का उपाय करना चाहिये। सभी सपत्नियों की सन्तान को उनकी माता के क्रमानुसार वस्त्र, अलंकार, भोजन, वस्त्र प्रदान करे। इन सबकी सन्तति के साथ माता तथा पिता समानता का व्यवहार करे। एक के दोष को अन्य पर लगाना अनुचित है, नीति-विरुद्ध है। स्त्रीगण के प्रेम, द्वेष, अभिप्राय, पवित्रता, अपवित्रता, बाहर, भीतर जाना तथा आगमन का भेद, दासों तथा गुप्तचरों से ज्ञात करता रहे॥४५-४८॥

आत्मानमपि विज्ञाय चित्तवृत्तेरनीश्वरम्। विश्वसेत कथं स्त्रीषु सर्वाविनयधामसु॥ ४९॥
वृद्धदास्यः क्रमायाता धात्र्यश्च परिचारिकाः। तन्मातृपितृकाद्याश्च षण्डवृद्धाश्चरा मताः॥ ५०॥
विविधैस्तत्कथाख्यानैस्तुल्यशीलदयान्वितैः। प्रविश्यान्तरभिप्रायं विद्यात्काले प्रयोजितैः॥ ५१॥

जब अपनी ही चित्तवृत्ति पर अपना अधिकार नहीं है, तब सभी अविनय की साक्षात् मूर्तिरूप स्त्रीगण का विश्वास कैसे हो? स्त्रीगण के अभिप्राय को भाँपने हेतु चर हैं परम्परागत वृद्ध, दासी, धाय, परिचारिका, उनके माता-पिता तथा नपुंसक— जो अन्तःपुर में जा सकें। विविध कथानक उपाख्यान तथा प्रवृत्ति द्वारा समय-समय पर अन्तःपुर में जाकर स्त्री के अभिप्राय को जानता रहे॥४९-५१॥

तेषु तेषु कथार्थेषु कथ्यमानेषु लक्षयेत्। मुखाकारादिभिर्लिङ्गैरभिप्रायं मनोगतम्॥ ५२॥
सीतारुन्धतिसम्बन्धैस्तथा शाकुन्तलादिभिः। सदसच्चरिताख्यानैर्भावं विद्यात्प्रवृत्तिः॥ ५३॥
तद्दुष्टानामदुष्टेषु साधूनामितरेषु च। प्रीतिः कथाप्रबन्धेषु स्यात्सख्यं पुरुषेष्वितः॥ ५४॥
एवमागमदुष्टाभ्यामनुमित्या च तत्त्वतः। स्त्रीणां विदित्वाभिप्रायं वर्तेताशु यथोचितम्॥ ५५॥

जब उन स्त्रियों से वे कथानक, उपाख्यानादि कहे जायें तब उन सबकी घटनाओं को सुनने से उनके मुख आदि की तथा शारीरिक भाव-भंगिमा से मनोगत भावों का कैसा प्रतिफलन होता है, यह देखकर पता लगाये। सीता, अरुन्धति, शाकुन्तला आदि के सत् चरित्र तथा अन्य के असत् चरित्र की कथाओं से उनकी प्रवृत्तियों तथा मनोगत भावों को ज्ञात करें। इन कथानकों में वर्णित पुरुष में से तथा स्त्री में से जो दुष्ट स्वभाव वाले हैं, उनके प्रति दुष्ट स्वभाव स्त्री की अधिक रुचि होती है। सच्चे स्वभाव वाली स्त्री की रुचि सत् स्वभावयुक्त कथापात्र के प्रति होती है। शब्द प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण तथा अनुमान प्रमाण से, युक्ति से स्त्रीगण की यथार्थता का ज्ञान करके उनके प्रति शीघ्र तदनुरूप व्यवहार करना चाहिये॥५२-५५॥

स्त्रीभ्यो विप्रतिपन्नाभ्यः प्राणैरपि वियोजनम्। दृष्टं हि च यथा राज्ञामतो रक्षेत्प्रयत्नतः॥ ५६॥
वेण्या गूढेन शस्त्रेण हतो राजा शुभध्वजः। मेखलामणिना देव्या सौवीरश्च नराधिपः॥ ५७॥

भ्रात्रा देवीप्रयुक्तेन भद्रसेनो निपातितः। तथा पुत्रेण कारुषो घातितो दर्पणासिना॥ ५८॥
 हौ काशिराजौ वै वन्द्यौ चानन्दापुरयोषिता। विषं प्रयुज्य पञ्चत्वमानीतौ पूजितात्मकौ॥ ५९॥
 एवमादि महाभागा राजानो ब्राह्मणश्च ह। स्त्रीभिर्यत्र निपात्यन्ते तत्रान्येष्विह का कथा॥ ६०॥

स्त्री की विरोधी भावना के चलते भूतकाल में न जाने कितने राजाओं का प्राणवियोग हो गया है। अतः इनसे सतर्कता के साथ आत्मरक्षण करे। स्त्री के केशजाल में छिपे शस्त्र से राजा शुभध्वज मारे गये। अपनी ही स्त्री की मेखला मणि द्वारा सौवीर नरेश का प्राणवियोग हो गया। अपनी ही स्त्री द्वारा प्रेरित अपने भाई द्वारा राजा भद्रसेन मारे गये। कारुष के राजा अपनी स्त्री की ही प्रेरणा से पुत्र द्वारा दर्पण की तलवार से मारे गये। दो काशिराज जो प्रजा के अत्यन्त प्रिय तथा पूज्य थे, विष द्वारा अन्तःपुर की स्त्री द्वारा मारे गये। जब स्त्रियाँ इस प्रकार के परमविद्वान् महाभाग राजा तथा ब्राह्मणों का वध कर देती हैं, तब साधारण की तो बात ही क्या?॥५६-६०॥

तस्मान्नित्याप्रमत्तेन जाया रक्ष्याश्च नित्यशः। यथावदुपचर्याश्च गुणदोषानुरूपतः॥ ६१॥
 वैषम्यादुपचाराणां विकारैश्चानिमित्तजैः। विशेषेण सपत्नीकैरकस्माच्चापि वेदनैः॥ ६२॥
 असम्भागे च वाग्दण्डपारुष्यादप्रसङ्गतः। प्रद्वेषो भर्तरि स्त्रीणां प्रकोपश्चापि जायते॥ ६३॥
 ततश्चायाति वार्धक्यमुद्रोदुश्चापि शत्रुताम्। तस्मान्न तान्प्रयुञ्जीत दोषान्दारविनाशकान्॥ ६४॥
 न चैताः स्वकुलाचारमधर्मं वापि चाञ्जसा। न गुणांश्चाप्युपेक्षन्ते प्रकृत्या किमु पीडिताः॥ ६५॥

यह सब विचार करके मनुष्य सदा सतर्क होकर स्त्री की रक्षा करता रहे। उनका गुण-दोष के अनुसार नियमन एवं आदर करता रहे। पति के प्रति स्त्रियों का द्वेष जिन कारणों से बढ़ता है वे इस प्रकार हैं— व्यवहार विषमता, अकारण मनोमालिन्य, सौत की प्रेरणा से होने वाला दुर्व्यवहार, बिना अपराध दण्ड देना, इच्छित सम्भोग न होना, कठोर दण्ड दिया जाना, बिना कारण सदा कठोर वचन कहना, इससे स्त्री में वार्धक्य तथा शत्रुता एवं मनोमालिन्य बढ़ जाता है। इसलिये व्यक्ति को चाहिये कि पत्नी के साथ उपर्युक्त दुर्व्यवहार न करे। इनसे स्त्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। स्त्री भली प्रकार से प्रसन्न रखे जाने पर भी कुलाचार, अधर्म, सद्गुण का सहसा विचार नहीं रखती। पीड़ित हो जाने की तो बात ही क्या?॥६१-६५॥

सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम्। परपुंसामसम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे॥ ६६॥
 तस्मात्सुरक्षिता नित्यमुपचारैर्यथोचितैः। सुभृता नित्यकर्माणः कर्तव्या योषितः सदा॥ ६७॥
 उत्तमां सामदानाभ्यां मध्यमाभ्यां तु मध्यमाम्। पश्चिमाभ्यामुभाभ्यां च अधमां सम्प्रसाधयेत्॥ ६८॥
 भेददण्डौ प्रयुज्यापि प्रागपत्याद्यपेक्षया। तच्छिष्टानां तदा पश्चात्सामदानप्रसाधने॥ ६९॥

स्त्रियाँ ३ कारणों से सती होती हैं, यथा— पर पुरुष से समागम का भय, मृत पति के प्रति विशेष प्रेम तथा स्वरक्षा। अतः यथोचित सत्कार करके स्त्री की रक्षा करे। उनको अन्तःपुर में ही सुरक्षित तथा सक्रिय रखे। उत्तम स्वभाव की स्त्री को साम-दाम से प्रसन्न रखे। मध्यम स्वभाव वाली स्त्री को यथासमय दण्ड देकर तथा दान देकर वशीभूत रखे। अधम स्वभाव वाली को पहले तो दण्ड तथा भेद से भयभीत करे। लेकिन कालान्तर में उसे साम तथा दान के प्रयोग से सन्तानरक्षार्थ सन्तुष्ट रखे॥६६-६९॥

यास्तु विध्वस्तचारित्रा भर्तुश्चाहितकारिकाः। त्याज्या एवं स्त्रियः सद्भिः कालकूटविषोपमाः॥ ७०॥
 इष्टाः कुलोद्गताः साध्यो विनीताभर्तृवत्सलाः। सर्वदा साधनीयास्ताः सम्प्रदायोत्तरोत्तरैः॥ ७१॥
 एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं योऽनुतिष्ठति। प्राप्नोत्येव स सम्पूर्णं त्रिवर्गं लोकसम्भवम्॥ ७२॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
 नरवृत्तवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

जो अति दुष्टा तथा पति का अकल्याण करने वाली है, उनको सज्जन व्यक्ति कालकूट विषवत् तत्काल त्यागें। मनोनुकूल,

उच्चकुलोत्पन्न, साध्वी, विनीत, पतिप्रिया स्त्रीगण को अत्यधिक सम्मान आदि से प्रसन्न रखे। इस नियम पालन द्वारा जो अपनी स्त्री से व्यवहार करता है, उसे संसार में धर्म, अर्थ, कामरूपी त्रिवर्ग का सम्पूर्ण उपभोग मिलता है॥७०-७२॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण के शतार्ध साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
नरवृत्त का वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥८॥

★★★